The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 3 | Issue 4 | April 2025
ISSN: 2583-973X (Online)
Website: www.theacademic.in

पूर्व मध्यकालीन भारत में श्रेणी संगठन या वृत्तिसंघ व्यवस्था

वेद प्रकाश

शोधार्थी प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति विभाग
म0 ज्यो0 फु0 रु0 वि0 वि0, बरेली
ई–मेल : ved.sagar18@gmail.com

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Accepted: 28-03-2025

Published: 10-04-2025

Keywords:

संगठित व्यापार, प्राचीन समाज, वैदिक साहित्य, उपनिषद

ABSTRACT

भारतीय धर्मशास्त्रों मे प्राचीन समाज की आर्थिकी का भी विश्लेषण किया गया है। उनमें उल्लिखित है कि हाथ से काम करने वाले शिल्पकार, व्यवसाय चलाने वाली जातियां व्यवस्थित थी। सामूहिक हितों के लिए संगठित व्यापार को अपनाकर उन्होंने अपनी सूझ बूझ का परिचय दिया था। इसी कारण वे आर्थिक व सामाजिक रूप से काफी समृद्ध भी थी। आचार्य पी0वी0 काणे ने उस समय मे विभिन्न व्यावसायिक संगठनों की विशेषताओं का अलग–अलग वर्णन किया है। कात्यायन ने श्रेणि, पूग, गण, ब्रात्य, निगम तथा संघ आदि को वर्ग अथवा समूह माना है।[1] लेकिन आचार्य कार्णे उनकी इस व्याख्या से सहमत नहीं थे। उनके अनुसार ये सभी शब्द पुराने हैं। यहां तक कि वैदिक साहित्य में भी ये प्रयुक्त हुए हैं। यद्यपि वहां उनका सामान्य अर्थ दल या वर्ग ही है।[2] इसी प्रकार कौषितकि ब्राह्मण उपनिषद मे पूग को रूद्र की उपमा दी गई है।[3] आपस्तब धर्म सूत्र मे संघ को परिभाषित करते हुए उसकी कार्य विधि और भविष्य को देखते हुए, अन्य संगठनों के संदर्भ मे उसमे अंतर को

समझा जा सकता है।[4] संक्षेप में बात करें तो पूर्व मध्यकाल में अर्थव्यवस्था को व्यवस्थित एवं समुन्नत करने में श्रेणी संगठनों की एक अपनी विशिष्ट भूमिका होती थी, क्योंकि समाज की आर्थिक गतिविधियाँ इन्हीं इकाईयों द्वारा ही संचालित होती थीं। समाज में एक तरफ जहाँ यह श्रेणियाँ लोगों की जीविकोपार्जन वस्तुओं की आवश्यकताओं की पूर्ति करती थी। वहीं दूसरी ओर अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने में सहायता प्रदान करती थी।

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.15484859

श्रेणी :–

श्रेणी एक/एकाधिक शिल्प, व्यवसाय, उद्योग एवं वाणिज्य व्यापार मे लगे हुए एक ही जाति के अथवा निम्न जातियों के लोगों का संगठन होता था। परन्तु पूर्व मध्यकाल तथा मध्यकाल के कई भाष्यकारों एवं निबंधकारों ने श्रेणी की नितान्त भिन्न परिभाषांए दी है। भट्टोंत्पल ने श्रेणी को व्यावसायिक के स्थान प एक ही जाति के लोगों का संघ माना है।[5] नन्दन ने इसे वणिकों तथा नटों का संगठन माना है। देवण[6] भट्ट[7] तथा मित्र मिश्र[8] ने श्रेणी की व्याख्या रजक आदि 18 निम्न जातियों के रूप मे की है। 12वीं सदी के बाद श्रेणी संघटन विघटित होकर जातियों (हीन जातियों) मे परिवर्तित हो गये थे। परन्तु इस काल के कुछ लेखकों ने श्रेणी का अर्थ व्यावसायिक संगठन भी लगाया है।[9] परन्तु पूर्व मध्यकालीन श्रेणी वर्ग की व्याख्या से पहले इसकी प्राचीनता को समझना भी आवश्यक हो जाता है।

भारत में सहयोग धारित व्यापारिक आर्थिक संगठनों के लिए श्रेणी शब्द का उपयोग ईसा से भी आठ सौ वर्ष पूर्व से होता आ रहा है। परस्पर सहयोगाधारित संगठनों के लिए यह शब्द इतना प्रचलित रहा है। कि उन्हें व्यवस्थित करने और वैधानिकता का दर्जा दिलाने वाले नियमों को भी श्रेणी धर्म कहा जाता था। संगठित व्यापार एवं उत्पादन के क्षेत्र मे कार्य करने वाले संगठनों के लिए यह

संबोधन 1000 ई0, अर्थात् मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना तक लोगों की जुबान पर चढ़ा रहा, इन संगठनों के लिए यद्यपि, पूग, नैगम, व्रात्य, पाणि, गण आदि संख्यांए भी प्राचीन काल से चली आ रही थी विद्वानों ने उनके बीच मे सैद्धांतिक अंतर को स्पष्ट करने का प्रयास भी किया है। तथापि ऐसे संगठनों के श्रेणी शब्द का प्रचलन ही सर्वाधिक रहा, आज भी इसे गिल्ड मे पर्याय के रूप मे जाना जाता है।

ध्यातव्य है कि गिल्ड श्रेणी के समान धर्मा यूरोपीय संगठन है। तथापि भारतीय प्राय द्वीप मे श्रेणी शब्द का उपयोग व्यापक संदर्भ लिए हुए था। लगभग सभी प्रकार मे व्यापारिक, उद्यमी और राजनीतिक संगठनों, नागरिक सेवा प्रदान करने वाले निकायों को श्रेणी के नाम से पहचाना जाता था। जहां तक प्राचीन संदर्भों की बात है, विष्णु धर्मसूत्र में श्रेणी का उल्लेख संगठित समाज के लिए किया गया है। जबकि मिताक्षरा ने श्रेणी को पान के पत्तों के व्यापारियों का समूह माना है।[10]

याज्ञवलक्य ने श्रेणि को विभिन्न जातियों का संगठन कहा है, जो किसी समान आर्थिक व्यापारिक उद्देश्य के लिए संगठित होते हैं। जो भी हो इतना सच है कि श्रेणी व्यापारियों के संगठित समूह थे, जिनकी अपनी पहचान होती थी। विद्वानों द्वारा उनके बारे मे अलग–अलग व्याख्या, उनके अनुभव और भौगोलिक परिस्थतियों के कारण भी संभव है। उल्लेखनीय है कि व्यापारिक संगठनों को अलग–अलग नाम दिया जाना किंचित मतवैभिन्य तथा सुविधा की दृष्टि से था। किसी भी व्यक्ति या समूह को अपने हितों की सुरक्षा के अनुसार किसी भी प्रकार के व्यवसाय को अपनाने की छूट प्राप्त थी। हालांकि कई स्थान पर इस नियम मे व्यवधान भी होते थे। हालांकि कई स्थान पर इस नियम मे व्यवहान भी होते थे। व्यवस्था के लिहाज से श्रेणियों को उनके लिए तय व्यवसाय मे काम करने की अनुमति प्राप्त थी। याज्ञवलक्य (2/30) ने ऐसे कुलों, जातियों, श्रेणियों, एवं गणों के दंडित करने को कहा है, जो अपने आचार–विचार से अच्युत होते हैं।[11]

नारद स्मृति मे भी श्रेणि, नैगम, पूग तथा गण का जिक्र करते हुए उनके परंपरानुरूप कार्यों की व्याख्या की गई है। इन संगठनों के व्यवसायों के अनुसार उनकी संरचना एवं सामाजिक प्रस्थिति मे

भी अंतर था। याज्ञवलक्य ने लिखा है कि पूगों एवं श्रेणियों को अपने झगड़ों का अन्वेषण करने, उन्हें सुलझाने का पूर्ण अधिकार है। उन्होंने पूग को श्रेणी से उच्चतम स्थिति मे माना है। मिलाक्षरा ने भी याज्ञवलक्य का समर्थन करते हुए श्रेणी और पूग के बीच पूग की उच्चतम स्थिति को ही मान्यता दी है। मिताक्षरा कहता है– ''पूग एक स्थान की विभिन्न जातियों एवं विभिन्न व्यवसायों वाले लोगों का समुदाय है– जैसे हेलाबुकों, तांबूलिकों, कुविंदो (जुलाहों) एवं चर्मकारों की श्रेणीयां चाहमान विग्रह राज के प्रस्तरलेख मे (हेड़ाविकों को प्रत्येक घोड़े के एक द्रम्भ देने का वृत्तांत मिलता है। नासिक अभिलेख संख्या 15 मे लिखा है कि अमीर राजा ईश्वरसेन के शासन काल मे 1000 कार्षापण कुम्हारों के समुदाय (श्रेणी) मे, 500 कार्षापण तेलिकों की श्रेणी में 2000 कार्षापण पानी देने वालों की श्रेणी (उदक–यंत्र–श्रेणी) मे स्थिर संपत्ति के रूप मे जमा किए गये, जिससे की उनके ब्याज से रोगियों तथा भिक्षुओं की दवा की जा सके, नासिक के नौवें एवं बारहवें शिलालेखों मे जुलाहों की श्रेणि का भी उल्लेख मिलता है। छुविष्म के शासन काल के मथुरा के ब्रहमाशिलावालों एवं कास्यकारों (ताम्र एवं कांसा बनाने वालों) की श्रेणियों में धन जमा करने की चर्चा हुई है। स्कंदगुप्त के इंदौर ताम्र पत्र मे तैलियों की एक श्रेणी का उल्लेख है। इन सब बातों से स्पष्ट है कि ईसा के आसपास की शताब्दियों मे कुछ जातियों, यथा लकड़हारों, तेलियों, जुलाहों आदि के समुदाय इस प्रकार की संगठित एवं व्यवस्थित थे कि लोग उनमें निःसंकोच सहस्त्रों रूपये इस विचार के साथ जमा करते थे कि उनसे ब्याज–रूप मे दान के लिए धन प्राप्त होता रहेगा।[12]

स्पष्ट है कि प्राचीन भारत मे श्रेणियां न केवल संगठित व्यापार का माध्यम बनी हुई थी, बल्कि वे आधुनिक वित्तीय संगठनों की तरह व्यवहार भी करती थी। लोग अपना व्यक्तिगत धन भी मुनाफे या लाभ की इच्छा के साथ उनके पास जमा कर सकते थे। उस समय के शासकों को भी श्रेणियों की वित्तीय क्षमताओं पर पूर्ण करने के लिए भी श्रेणियों मे धन निवेश किया जाता था।

पूग :–

आर्थिक संगठन के रूप मे पूग के प्राचीनतम उल्लेख संभवतः अंगुतर निकाय, विनय पिटक तथा अष्टाध्यायी मे प्राप्त होते हैं।[13] गुप्त कालिन स्मृतिकारों ने पूग को शिल्पियों, वाणिज्यों एवं व्यापारियों का संगठन बताया है।[14] विज्ञानेश्वर (याज्ञ0, 230) के अनुसार पूग विभिन्न व्यवसाय करने वाले किन्तु एक ही ग्राम या नगर मे रहने वाले भिन्न–भिन्न जाति के लोगों का संगठन था।[15] मित्र मिश्र ने इसकी वयाख्या विभिन्न जातियों के वाणिकों के समूह के रूप में भी है।[16] वणिकों के समूह के रूप मे भी की है। विश्वरूप ने इसे ब्राह्ममण आदि जातियों का संगठन बनाया है।[17]

नैगम अथवा निगम :–

अमर कोश मे इसे वणिक के 84 पर्यावाची शब्दों मे शामिल किया गया है। अपरार्क[18] और विश्वरूप के अनुसार नैगम व्यापार के लिए काफिलों मे संगठित होकर विभिन्न देशों को जाने वाले वाणिज्यों का समूह था।[19] देवयण्ण भट्ट ने भी नैगम की लगभग यही परिभाषा दी है।[20] इन लेखकों ने नैगम को सार्थ का पर्यावाची मान लिया था। जैन ग्रन्थों के साक्ष्य के अनुसार हरगोविन्द दास ने नैगम का अर्थ वर्णक, व्यापारी अथवा व्यापार का स्थान माना है।[21]

सार्थ :–

यह काफिले मे संगठित होकर व्यापार के लिए देश विदेश की व्यावसायिक यात्रा करने वाले वाणिज्यों का संगठन था जिसका नेता सार्थवाह कहलाता था। सूझबूझ वाले, साहसिक, व्यापार एवं यात्रा का अनुभव रखने वाले, सच्चरित्र और कुशल संगठन कर्ता को ही व्यापारियों के सार्थ का नेता बनाया जाता था कई बार यह वंशानुगत भी होता था। यात्रा के लिए प्रस्थान करने से पूर्व सार्थ वाह घोषणा करता था। कि उसका काफिला व्यापार के लिए अमुख स्थान को अमुख दिन प्रस्थान करेगा। सार्थ मे शामिल होने वाले व्यापारियों के जान–माल एवं सुख सुविधा आदि की समुचित व्यवस्था

सुनिश्चित की जायगी इत्यादि।[22] तत्कालीन पांच प्रकार के सार्थ वर्णित है, यथा व्यापारिक वस्तुंए गड़ियों मे ले जाने वाले 2–ऊंटो, खच्चरों तथा बैलों आदि पर लादकर ले जाने वाले, 3. सिर पर रखकर ले जाने वाले 5. सन्यासियों के सार्थ।[23]

देशी :–

व्यावसायिक संगठन के लिए देशी शब्द का उल्लेख 1077 ई0 मे पहोवा अभिलेख मे प्रयुक्त हुआ है।[24] नाडूल के चाहमान नृपत्ति राज्यपाल के विक्रम संवता 1202 (1145) के नाडलें प्रस्तर लेख मे अभिनव पल्ली, बदरी और नाडलौ के बनजारकों की देशी का उल्लेख मिलता है।[25] दशरथ[26] शर्मा तथा बी0एन0एस0 यादव[27] ने इसका अर्थ व्यावसायिक श्रेणी लगाया है।

देशी शब्द का प्राचीनतम उल्लेख उद्योतन सूरी कृत, कुवलयमाला (780ई0) से प्राप्त है। इस ग्रन्थ मे बताया गया है कि महाराष्ट्र के प्रसिद्ध बन्दरगाह नगर शूर्पारक (ठाणे जिला) मे देशी वणिज्यों के मिलने या बैठक करने का एक स्थान था। देशीय वणिय मेलीय जहाँ विभिन्न वस्तुओं के व्यापारी समय–समय पर मिलते थे और एक दूसरे को अपने व्यापारिक अनुभव बताते थे। एक बार उत्तरापथ मे स्थित अचलपुर नगर का व्यापारी लोभदेव जब शूर्पारक मे था, तो वहां पर अपने मित्र शूर्पारक के वरिष्ठ श्रेष्ठि के साथ उपर्युक्त सभा या बैठक मे शामिल हुआ था। कुवलयमाला को उपरिवर्णित संदर्भ मे भी देसीए शब्द स्थानीय अर्थ मे आया है।[28]

पूर्व मध्यकाल मे श्रेणियों की संख्या मे अभूतपूर्व वृद्धि हुई। इसका मुख्य कारण 800–1200 ई0 मे उत्तर भारत मे नगरों की संख्या मे भारी वृद्धि का होना था।[29] अन्य कारकों मे अनेक शिल्पों/उद्योगों मे विशिष्टीकरण का बढ़ना तथा कुछ बड़ी श्रेणियों का विभाजन भी था। अलवेरूनी ने केवल आठ व्यावसायिक संगठनों का उल्लेख किया हैं जो इस प्रकार है– चिड़ीमार, जूते बनाने वाले, मदारी, टोकरी एवं ढाल निर्माता, नाविक, मछुआरे और बुनकर। इस काल मे कई साक्ष्यों मे श्रेणियों की संख्या 18 तक है। जैन ग्रंथ जंबू द्वीप[30] प्रज्ञप्ति मे निम्न 18 प्रकृतियां (श्रेणियां) वर्णित हैं, जिनमे 9 स्पृश्य तथा 9 अस्पृश्य (अन्तयज) हैं– कुंभकार, बुनकर, सुवर्णकार, सूपकार, गायक, नाई, मालाकार,

मच्छकार, (रस्सी बनाने वाले) तंवोली (ये 9–स्पृश्य हैं) चर्मकार, तेल पेरने वाले, गाच्छिक, चिम्पायक (वस्त्रों की रंगाई छपाई करने वाले) कास्यकार दर्जी, गुआ (गोपालक) भितल एवं धीवर (ये 9 अस्पृश्य) शामिल हैं।

वीना जैन ने पूर्व–मध्यकाल के 45 श्रेणी संगठनों की तालिका दी है।[31] पूर्व मध्यकाल के उत्तरार्ध की बदलती हुई राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियां श्रेणी संगठनों की प्रति अनुकूल नहीं थी जिससे ये संगठन पतनावस्था की तरफ अग्रसर हुए।[32] बड़े राज्यों के अभाव तथा बड़ी संख्या मे क्षेत्रीय शक्तियों के उदय के परिणाम स्वरूप कानून तथा व्यवस्था मे कमी आई और मुस्लिम हमलावारों ने भी यहां के राजनैतिक तथा सामाजिक जीवन को बुरी तरह अव्यवस्थित कर दिया। सामंती व्यवस्था मे विचौलिए भू–स्वामियों की संख्या और कोटियों मे पर्याप्त बढ़ोत्तरी के होने से कृषि मजदूरों की भांग बढ़ने लगी तथा परिणाम स्वरूप बहुत सारे मजदूर कृषि का काम करने लगे। जिस कारण श्रेणी संगठनों को उत्पादन करने तथा दूसरे कार्यों को करवाने के लिए पूर्ण संख्या मे मजदूर नहीं मिल पा रहे थे। प्रशासन व्यवस्था मे सामन्तों ने श्रेणी संगठनों को प्रतिनिधियों का स्थान हासिल कर लिया था। सामंत शासक अपने आदेशों तथा निर्देशों को संगठनों पर थोपने लगे तथा शिल्पियों, वाणिजों और व्यापारियों से अपने तरीके से कर व भेंट प्राप्त करने लगे। इसके फलस्वरूप श्रेणियों की न केवल स्वतंत्रता मे कमी आई, बल्कि माली हालत भी बद से बत्तर हो गई। इस काल के साक्ष्यों मे उल्लिखित व्यापार कारण्ड्य[33] एवं श्रेणी[34] करण संज्ञक अधिकारी श्रेणियों के कामों पर नजर रखने हेतू लगाए गए थे।

राज्य पाल के दो सामंती पुत्रों ने 1132 ई0 मे तेल पेरने वाले प्रत्येक कोल्हू से एक पालिकर तेल लिए जाने का आदेश जारी किया तथा इस तिथी के कुछ ही सालों के पश्चात् राज्यपाल के दूसरे सामंत ने तेल की मात्रा बढ़ाकर दोगुनी कर दी थी।[35] मिथिला मे एक स्वेच्छाचारी राजा के विषय मे कहा गया है कि उसने स्वर्णकारों की एक श्रेणी को अपने राज्य से केवल इसलिए निकाल

दिया था क्योंकि इस राजा ने जो कर्णा भूषण उनके पास ठीक होने के लिए भेजे थे उन्होंने उनको ठीक नहीं किया।[36]

पूर्व मध्यकाल के अन्तिम भाग मे तो श्रेणियों का मौलिक स्वरूप ही परिवर्तित हो गया तथा वे ज्यादातर जातियों मे परिवर्तित हो चुकी थी। भट्टोपल ने श्रेणियोंको एक ही जाति के लोगों का संगठन कहा है।[37] देवण्णभट्ट[38] तथा मित्रमिक्ष[39] ने श्रेणियों को 18 निम्न जातियों का संगठन। जिनेश्वर सूरी स्वर्णकारों एवं कुम्भकारों आदि की श्रेणियों को अधम जातियां बताता[40] है। ग्वालियर अभिलेख मे उल्लेख मिलता है कि नगर के तेलियों की 20 श्रेणियां तथा मालाकारों की 14 श्रेणियां कार्यरत थी। सीप[41] दोणी अभिलेख से ज्ञात होता है कि इस नगर के एक भाग मे पाषाण कार्य करने वाले शिल्पी, तेली, स्वर्णकार आदि निवास किया करते थे और इसके दूसरे भाग मे कास्यकारों की वीथी थी।[42]

पूर्व मध्यकाल के कई अभिलेखों मे किसानों, शिल्पियों एवं श्रेणी संगठन सहित ब्राह्मणों को दान मे दिये जाने वाले गाँव का वर्णन भी मिलता है।[43] उड़ीसा से 7वीं शदी का एक अभिलेख प्राप्त होता है जिसमें तंतुवाय, सुराकार एवं अन्य शिल्पियों समेत एक ग्राम को दान ये देने का उल्लेख मिलता है। महाराष्ट्र मे जिले अहमद नगर से प्राप्त एक यादव शासक भिल्लम द्वितीय के 1000ई0 के एक अभिलेख मे एक ग्राम को दान मे दिया गया है तथा उस गाँव 18 श्रेणियों का भी उल्लेख मिलता है।[44]

पूर्व मध्यकाल मे श्रेणी संगठन के अधिकार कर्तव्य पर नजर डालने पर पता चलता है देवण्ण भट्ट ने लिखा है कि श्रेणी संगठन का निर्माण करने के लिए निम्नलिखित मे से सभी या कुछ योग्यताओं वाला व्यक्ति ही उपयुक्त होता था–उत्तम कुल एवं आचरण, ईमानदारी, परिश्रम, पौरूष, कार्य कुशलता और व्यावहारिक वृद्धि[45] श्रेणी धर्म की व्याख्या मे देवण्णभट्ट लिखता है कि आर्थिक संगठनों (संघों) को ही यह निर्धारित करने का अधिकार प्राप्त था कौन सी वस्तु के किस श्रेणी द्वारा कब और किस मूल्यपर विक्रय की जायेगी।[46] अग्नि पुराण मे राजा को यह निर्देश दिया गया है कि

वह श्रेणियों के परम्परागत नियमों और रीति–रिवाजों में हस्तक्षेप न करे।[47] तथा राजा से यह भी उम्मीद की जाती थी जब कभी भी श्रेणी संगठन का प्रमुख या प्रतिनिधि जब कभी राजा से मिलने जाए तो राजा उसका स्वागत करें तथा उसे भेंट देकर सम्मानित करे।[48]

पूर्व मध्यकाल मे श्रेणी प्रमुख को संगठन के विविध कार्यों मे सहयोग देने के लिए कार्य चिन्तकों या समूहहित वादियों के रूप मे भी नियुक्त किया जाता था। अग्नि पुराण के अनुसार उत्तम चरित्र, आचरण वाले, वेदा, लोभ–लालच से रहित एवं ईमानदार व्यक्तियों को ही इस पद पर नियुक्त किया जाता था।[49] देवण्ण भट्ट के अनुसार श्रेणियों के सदस्यों की संख्या ज्यादा होने के कारण, समूह (श्रेणी) के मामलों को सर्वसम्मति से तय कर पाने मे कठिनाई होती है। अतः 2 3, अथवा 5, कार्य चिन्तकों को नियुक्त किया जाना चाहिए। कार्य चिंतको का विरोध करने वाले, संगठन की गोपनीय बातों का खुलासा कर देने वाले तथा भेद पैदा करने वाले सदस्यों के लिए दण्ड का प्रावधान होता था।[50] कार्य चिंतको एवं श्रेणी प्रमुखों द्वारा लिए गए निर्णयों को मानना प्रत्येक सदस्य को वैधानिक मानना पड़ता था।[51]

पूर्व मध्यकाल मे श्रेणी प्रमुखों की प्रतिष्ठा आदि मे वृद्धि हुई। इनके लिए प्रधान, मुख्य महर, महत्तक, श्रेष्ठि, महाश्रेष्ठि, महागणस्थ राणक तथा राजा शब्द प्रयुक्त होता था[52] जिसका अन्य संगठनों पर भी प्रभाव एवं नियंत्रण स्थापित था।[53] शिल्पियों की 18 श्रेणियों के प्रधान को सेट्ठि कहा गया है।[54] तेलियों के एक श्रेणी प्रमुख को तैलिक राज[55] और वारेन्द्र के शिल्पियों की श्रेणी प्रमुखकों राजक की उपाधियाँ दी गई है।[56] पूर्व मध्यकाल के अनेक अभिलेखों मे श्रेणी प्रमुखों के नाम हमें मिलते हैं। 1876 ई0 के ग्वालियर के वैल्ल भट्टस्वामी मंदिर अभिलेख में तेलियों की श्रेणियों के 4 प्रमुखों के नामों का उल्लेख है।[57]

पूर्व मध्यकाल मे आर्थिक संगठनों को न्यायिक अधिकार प्राप्त होते थे तथा वे न्यायालय के रूप मे भी कार्य करते थे। याज्ञवलक्य (2.30) की टीका मे विज्ञानेश्वर ने न्यायालयों की कोटियों का उल्लेख करते हुए कहा है कि किसी निर्णय से असंतुष्ट व्यक्ति वरीयत क्रम मे क्रमशः कुल श्रेणी तथा

पूग और अंततः राजा के पास जा सकता है।[58] विश्वरूप ने भी इसी प्रकार का मत व्यक्त किया है।[59] जैन ग्रन्थ नायाधम्मकहा (8.107) मे यह कहा गया है किसी चित्रकारों की श्रेणी के एक सदस्य को मल्ल दिन नामक राजकुमार ने मौत की सजा सुनाई थी। श्रेणी संगठन के इस निर्णय के खिलाफ राजा से आग्रह किया गया तथा राजा ने मृत्युदण्ड की जगह उसे राज्य से निष्काषित किये जाने का फरमान जारी किया।[60]

निशीथ चूर्णि (10.3193) से हमें पता चलता है कि धोवियों की श्रेणियों का प्रमुख एक हत्या के सन्दर्भ मे राजा से मिला था।[61] दंडी के दशकुमार चरित (7वीं सदी) के संदर्भ मे उल्लिखित है कि एक श्रेणी संगठन द्वारा शमशान भूमि की रक्षा के लिए एक पुरूष को नियुक्त किया गया था। इस व्यक्ति ने एक मृत स्त्री के शरीर से आभूषण उतार लिया था। पकड़े जाने पर श्रेणी ने उसके पक्ष मे निर्णय दिया जिसको वहां के राजा ने भी स्वीकार कर लिया था।[62]

पूर्व मध्यकाल मे श्रेणी संगठनों द्वारा सामाजिक धार्मिक एवं जन कल्याण के कार्य किये जाने के भी वर्णन प्राप्त होते हैं। 1047 ई. मे सीद दोजी अभिलेख मे ताम्बूल विक्रेताओं की एक श्रेणी एवं इसके प्रमुख चंदुक द्वारा विष्णु के एक मंदिर का निर्माण कराने का उल्लेख मिलाता है। एक अन्य अभिलेख मे श्रेणी के प्रधान द्वारा अरण्यवासिनी के मंदिर का निर्माण कराने का उल्लेख है।[63] उदयादित्य के 1086 ई0 अभिलेख में तेलियों की श्रेणी द्वारा मंदिर तालाब आदि के निर्माण कराने का उल्लेख मिलता है।[64] 1143 ई0 मे नाडलै के महाजनों तथा श्रेष्ठियों ने महावीर के मंदिर मे उन वस्तुओं को भेंट किया था जिनका वे व्यापार करते थे।[65] महावतों की एक श्रेणी द्वारा 20 निवर्तन भूमि दान देने का उल्लेख है।[66] बंधो गढ़ अभिलेख से हमें पता चलता है कि पत्थर का काम करने वालों की एक श्रेणी ने यात्रियों आदि के बैठने के लिए पत्थर की चौकियाँ बनवाई थी।[67] 882ई0 के पोहोवा अभिलेख मे घोड़ों के व्यापारियों के सदस्यों द्वारा मंदिर को दान देने का उल्लेख प्राप्त होता है।[68]

पूर्व मध्यकाल मे श्रेणी प्रमुख प्रशासन व्यवस्था से जुड़े हुए थे। वातापी के चालुक्य शासक विक्रमदित्य द्वितीय के राज्यकाल के लक्ष्मणेश्वर अभिलेख से हमे ज्ञात होता है कि लक्ष्मेश्वर ठठेरों

श्रेणी को चालुक्य नरेश ने उस नगर का कर वसूलने का अधिकार प्रदान किया था।[69] विजय सेन के एवं अन्य अभिलेख (वैरकपुर) मे महागणस्थ (श्रेणी प्रमुख) का एक अधिकारी के रूप मे वर्णन मिलता है।[70] महाश्रेष्ठि की भी सम्मान जनक जगह थी तथा उसकी गिनती राजदरबार के खासम खास लोगों मे की जाती थी।[71]

नवीं सदी के ललितसूर देव को पंडुर केश्वर अभिलेख मे वणिजों के संगठन के प्रमुख का राज्य मे पदाधिकारियों के साथ उल्लेख मिलता है।[72] 1065 ई0 के राजपुर अभिलेख मे एक श्रेष्ठि द्वारा रानी एवं राजकुमारों के साथ एक ग्राम देने का उल्लेख मिलता है।[73] इससे इसकी राजघराने से सन्निकटता का संकेत मिलता है जो सम्भवतः उसे प्रशासन से जुड़े होने के कारण प्राप्त हुई होगी। श्रेष्ठियों का 18 श्रेणियों एवं उपश्रेणियों का दुर्गों के रक्षक के रूप मे उल्लेख है–

श्रेष्ठिभेडष्टादशश्रेणिप्रक्षेणी दुर्गपालकम्।।[74]

पूर्व मध्यकाल मे श्रेणियों मे बैंकों के रूप मे कार्य करने के विवरण प्राप्त होते हैं। मथुरा से प्राप्त एक अभिलेख से यह विवरण मिलता है कि एक राजा ने एक शिव मन्दिर मे प्रतिदिन फूल–मालांए चढ़ाने के मालाकारों की श्रेणी के पास कुछ धनराशि जमा की थी।[75] भोग शक्ति के शासन काल के अंजनेरी ताम्र पत्राभिलेख मे तेजवर्मा द्वारा जयपुर के वणिजों की एक श्रेणी के पास 100 रूप्यक (चांदी के सिक्के) जमा किए जाने का विवरण मिलता है। इस धनराशि के ब्याज से योगेश्वर भगवान की पूजा के लिए गुग्गुल उपलब्ध कराने का प्रावधान किया गया था।[76] कामन प्रस्तर अभिलेख से यही जानकारी मिलती है कि काम्यक मे काम करने वाले शिल्पियों, मालाकारों तथा कुम्भकारों की श्रेणीयों के पास कुछ धन इस निर्देश के साथ जमा किया गया था वे प्रतिदिन 34 फूल मालांए विष्णु के मंदिर में और 24 मालांए चामुण्डो के मंदिर मे चढ़ाने की व्यवस्था करें।[77] सीय देणी अभिलेख के अनुसार मध निर्माताओं की एक श्रेणी के पास एक वणिक ने 1350 द्रम्भ इस निर्देश के साथ जमा किए थे। कि संगठन प्रतिमाह हर सुरा भांड के विक्रय पर श्री विष्णु पर श्री विष्णु भट्टार को अद्र्धविग्रह तुंगीय द्रम्भ देंगे।[78]

येवुर अभिलेख मे शिवपुर की एक व्यापारिक श्रेणी के समक्ष धार्मिक कार्य सम्पन्न करने हेतू कुछ धनराशि जमा करने का उल्लेख मिलता है।[79]

पूर्व मध्यकाल मे शिल्प एवं वास्तु उद्योग का काफी विकास हुआ। वास्तुकारों/शिल्पकारों के श्रेणी संगठनों का उल्लेख हमे प्राप्त होता है। वारेन्द्र के शिल्पियों की श्रेणी का प्रधान (शिल्पी चूड़ामणि) शूल पाणि था।[80]

सन्दर्भ सूची

1. राणा : पाषंड पूगा§ा बाता§ा श्रणेयस्तथा। समूहस्था§ा ये पान्ये वर्गाख्यास्ते, वृहस्पति : स्मृति चंद्रिका (व्यवहार) में उद्धत कातयान्वचन धर्मशास्त्र का इतिहास, खण्ड एक, पी0वी0 काणे से उद्धृत, (विकीपीडिया)
2. हंसा द्वव श्रेणिशो यतंते यदा क्षिपुर्दिधयं म§ावा, श्रृग्वेद 1, 163.10
3. पूगौ वै खद्र, : तदेनं स्वेन यूगेन समर्धयतिः कौषी : ब्राह्मण 16.7
4. तस्मादु ह वै ब्रह्म चारिसंघ चरंतं न प्रत्या पक्षी तापि है तेष्टेबंविधा एवं व्रत : स्यादिति हि ब्राह्मणम्
5. वृहत्संहिता, 34.9 पर टीका
6. वाणिक्कु शीलवादि, मनु, 8.4 पर टीका
7. स्मृति चन्द्रिका, व्यवहार काण्ड, पृ0 40
8. वीर मित्रोदय, व्यवहार काण्ड, पृ0 12
9. वीर मित्रोदय, व्यवहार काण्ड, पृ0 20; वी0एन0एस0 यादव सोसायटी
10. धर्मशास्त्र का इतिहास : आचार्य पांडुरंग वामन, काणे, खण्ड प्रथम, पृ0 124
11. वही, पृ0 124
12. वही, पृ0 124
13. दृष्टव्य मजूदार आर0सी0 : कारपोरेट लाइफ इन एन्शियन्ट इण्डिया, पृ0 129; अग्रवाल, वासुदेवशरण : कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 437
14. समूहो वाणिज्य दीना पूग : संपरि कीर्तित, : कात्यायन, 6,9; वृहस्पति, 17.5; नारद 10.2

15. पूगो भिन्नजातीयानां वाणि का दीनां समूह : याज्ञ; 2.30 पर टीका
16. पूगा : समूहा : भिन्नजाति भिन्नवृत्तीनां एक स्थान निवासिनां दथा ग्रामनरादयः
17. ब्राह्मणादि समूह : पूगा :1, धर्म कोश 1, पृ0 40
18. वाणिज्यं तु वाणिज्या स्थात्। अमर, 2.9.79
19. सह देशांत खाणिज्यार्थ ये नानाजातीया अभिगच्छंति ते नैगमाः।
    – धर्मकोष 1, पृ0 869
20. नैगमा : सार्थिका वाणिना 1, स्मृति चंद्रिका 3, भाग 1, पृ0 9
21. पाइस सहमहव्णवो, वाराणसी 1963, पृ0 42
22. कुबलयमाला, भाग 1, पृ0 60–66, 15–53
23. जैन, जगदीश चन्द्र : लाइफ ऐज डेपिक्टिड इन जैन मैनन्स, पृ0 153
24. जैन, पी0सी0, : सोसिया इकोनोमिक एम्सप्लोरेशन ऑफ अर्ली मेडीकल इंडिया, पृ0 299
25. नाड़ले प्रस्तर लेख, ए0इ0 11, पृ0 42–43
26. शर्मा, दशरथ (सं0) राजस्थान थ्रु दि एजिज, पृ0 496
27. गुप्त, डी0के0 : सोसायटी एण्ड कल्चर इन द टाइम्स ऑफ इण्डियन, पृ0 286
28. कुवलयमाला, भाग 1, पृ0 65; एस0एम0 मिश्र : फोरेन ट्रेड फ्राम समराइच्च कहा ऐंड कुक्लय माला, जर्नल ऑफ ओरियंटल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा, 24 (1974), पृ0 190–191
29. एस0के0 सरस्वती : कमेमोरेशन, वाल्यूम, पृ0 51
30. सचौ, 1, पृ0 100; पी0सी0 जैन : पूर्वोद्धत, पृ0 309
31. परमानंद महाकाव्य 16, 193; त्रिषष्टि शलाका पुरूषचरित, भाग 1, अध्याय 4 पृ0 662
32. यादव : पूर्वोद्धत, पृ0 42
33. वही, पृ0 199–202
34. कौशाम्बी, डी0डी0 : एन इंट्रोडक्शन टु दि स्टडी ऑफ इण्डियन हिस्ट्री पृ0 311; छोष, ए, : सिटी इन अर्ली हिस्टोरिकल इण्डिया पृ0 15; यादव, वी0एन0एस0 : सोसायटी ऐंड कल्चर ऑफ नार्दन इण्डिया इन दि टवेल्थ सेंचुरी पृ0 268, 275; मजूमदार वी0सी0 : गिल्ड इन अर्ली मेल्विल नार्थ इण्डिया : एस0के0 सरस्वती केमोसोरेशन वाल्यूम, पृ0 48–53; जैन, बीना : गिल्ड्स ऑर्गनाइजेशन इन एशियंट इण्डिया; पृ0 140
35. धर्मादित्य के शासन काल का फरीदपुर अभिलेख, स0ई0 1, पृ0 354
36. लेख पद्धति, पृ0 1, मजूमदार वी0पी0एस0 के सरस्वती कमेमोरेशन वाल्यूम ;पृ0 51.
37. ए0इ0, 11, पृ0 42

[38]. नायाध्म्म कहाओ, 8 पृ0 105; जैन0सी0 : पूर्वाद्धत, पृ0 90

[39]. वृहत्संहिता, 34.19 पर टीका

[40]. स्मृति चंद्रिका 3, व्यवहार काण्ड 1, पृ0 40

[41]. व्यवहार काण्ड, पृ0 12

[42]. कथाकोश प्रकरण, इंट्रोडक्शन, पृ0 117 तथा आगे

[43]. ए0इ0, 18 पृ0 99 तथा आगे

[44]. वही, 1 पृ0 162–79

[45]. शर्मा, रामशरण : भारतीय सामंतवाद, पृ0 48–49

[46]. गोपाल, एल0 : पूर्वोद्धत, पृ0 85

[47]. मुखर्जी, आर0के0 : लोकल गवर्नमेंट इन एन्शियण्ट इण्डिया, पृ0 83

[48]. स्मृतिचंद्रिका, पृ0 65

[49]. श्रेणि नैगमपारूंडिगणनामत्ययं विधिः।
भेर चेषां नृपो रक्षंत पूर्ववृत्तिं च पालदेत।। अग्निपुराण, 257.42

[50]. त्रिपष्टिशलाका पुरूष चरित, 1,4 पृ0 662

[51]. अग्निपुराण, 257.38–42

[52]. स्मृति चंद्रिका, 3, पृ0 526 तथा आगे

[53]. जैन, पी0सी0 : पूर्वोद्धत, पृ0 316

[54]. वही, पृ0 312–13

[55]. वही, पृ0 312

[56]. वृहत्कल्प भाष्य, 3.375

[57]. शेरगढ़ अभिलेख, ए0इ0, 1, पृ0 307 तथा आगे

[58]. वही, 1, पृ0 174 तथा आगे

[59]. वही, 1, पृ0 159 तथा आगे

[60]. याज्ञ. 2.30 पर टीका

[61]. धर्मकोश, भाग 1, पृ0 41

[62]. जैन, जे0सी0, : पूर्वोद्धत, पृ0 144

[63]. वही, पृ0 81–81

[64]. दृष्टव्य – धपल्यपाल : निगम एंड सरीनी सील्स, पृ0 103

65. ए0इं0, 1, पृ0 175
66. वही, 20, पृ0 97
67. ज0ए0सो0बं0, 10 (1914), पृ0 24
68. ए0इं0, 9, पृ0 24
69. सी0आइ0आइ0, 4, भाग 2, पृ0 615–17
70. वही, पृ0 328
71. ए0इ0, 1, : पृ0 184 तथा आगे
72. वही, 14, पृ0 188
73. मजूमदार, एन0जी, : इंशक्रिप्शन्स ऑफ बंगाल, 3 पृ0 57 तथा आगे
74. ए0इं0, 7, पृ0 91, तथा आगे
75. वही, 25, पृ0 177 तथा आगे
76. त्रिषष्टि शलाका पुरूष चरित, पृ0 662
77. ए0इं0, 32 सं0 25
78. सी0आई0आई0, 4 भाग 2, सं0 31
79. जैन, पी0सी0 : पूर्वोद्धत; पृ0 306
80. ए0इं0, 1, पृ0 162 तथा आगे